IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429
Volume 5, Issue 5, May 2020
Impact Factor: 4.819

श्रीमद्भगवद्गीता में भक्ति का स्वरूप

डॉ. कीर्ति शुक्ला
असिस्टेंट प्रोफेसर- संस्कृत
राजकीय महाविद्यालय, मानिकपुर, जनपद- चित्रकूट (उत्तर प्रदेश)

शोध सारांश

श्रीमद्भगवद्गीता में भक्ति की महिमा का गान करते हुए कहा गया है कि भक्ति व्यक्ति के लिए इसलिए अनिवार्य है क्योंकि यह भक्ति केवल स्वर्ग, संपत्ति, सन्तति एवं कामनाओं की पूर्ति ही नहीं कराती, अपितु यह भी सिखाती है कि प्रेम का प्रेम से बढ़कर पुरस्कार प्रेम ही है और स्वयं ईश्वर प्रेम स्वरूप है। साथ ही यह भी ज्ञात होता है कि कर्म को कर्म के लिए करना चाहिए तथा निष्काम कर्म करना चाहिए जिसमें किसी प्रकार की कोई अभिलाषा न हो। इस प्रकार ज्ञान, कर्म, एवं भक्ति में समन्वय स्थापित करके ही कर्म की ओर प्रवृत्त होना चाहिए।

कुंजीपटल— त्रय साधना मार्ग, अव्यक्तोपासना, निदिध्यासन, निष्काम कर्म, शरणागति, लोकव्यवहार, अपरिग्रहभाव, लोकसंग्रह, पराभक्ति, इन्द्रियनिग्रह।

श्रीमद्भगवद्गीता भारतीय संस्कृति का आकर ग्रंथ है। यह ग्रंथ किसी एक धर्म, जाति का नहीं, अपितु यह उस सनातन धर्म के मूल्यों को स्थापित करता है, जो अपने स्वरूप में भारतीय नहीं अपितु वैश्विक है। गीता की दृष्टि अत्यन्त समन्वयात्मक है जिसमें परस्पर विरोधी एवं असंगत दिखने वाली विचारधाराओं में समन्वय स्थापित किया गया है। श्री कृष्ण यह जानते हैं कि विभिन्न सिद्धान्तों एवं साधनाओं में जो पार्थक्य और विरोध प्रतीत होता है, वह केवल प्रारम्भिक या साधना के स्तर पर होता है, जबकि इनका लक्ष्य एक ही है— "आत्म साक्षात्कार"। साध्य की दृष्टि से इसमें किसी प्रकार का भेद नहीं होता, इसलिए भगवान कृष्ण बिना संकोच कभी ज्ञानयोग, कभी कर्मयोग

Copyright to IJARSCT
www.ijarsct.co.in

एवं कभी भक्ति में अद्भुत समन्वय स्थापित करते हैं। अनादि काल से रुचि भेद और सामर्थ्य भेद के आधार पर तीन साधना मार्ग प्रचलित हैं—

1. ज्ञानमार्ग
2. कर्ममार्ग
3. भक्तिमार्ग

इन तीनों मार्गों का ही समन्वय श्री कृष्ण ने अपने उपदेश में करते हुए गीता के आध्यात्मिक एवं मानवीय सन्दर्भ का कारण भक्तित्व स्वीकार किया है। गीता में भगवान के साकार (सगुण) एवं निराकार (निर्गुण) दोनों ही रूपों की चर्चा की गई है, जिसमें विशेष रूप से नवम एवं दशम अध्याय में सगुण रूप की उपासना का वर्णन प्राप्त होता है। ज्ञानमार्ग का उपास्य भगवान का निर्गुण, निराकार, सर्वव्यापी रूप है। इसे 'अव्यक्तोपासना' एवं भक्तिमार्ग में भगवान के सगुण और साकार विशेष रूप से नरदेहधारी रूप की उपासना होती है। उसे 'व्यक्तोपासना' करते हैं। इन दोनों ही उपासनाओं की चर्चा गीता में कई स्थलों पर की गई है। इसमें यह सिद्ध होता है कि दोनों ही मार्गों के उपास्य एक ही परमात्मा है और दोनों का लक्ष्य भी एक ही है अर्थात ज्ञान और भक्ति दोनों से एक ही परमात्मा का साक्षात्कार होता है। गीता के नवम अध्याय में[1] भगवान ने भक्तिमार्ग की प्रशंसा करते हुए उसे 'राजविद्या राजगुह्य' नाम से संबोधित किया है।

गीता के बारहवें अध्याय[2] में श्री कृष्ण कहते हैं कि जो निराकार ब्रह्म की उपासना करते हैं उन्हें विशेष परिश्रम करना पड़ता है, क्योंकि देहधारी मनुष्य की बुद्धि निराकार परमात्मा में उसी तरह समापन्न नहीं होती जैसे साकार में होती है। इसका कारण यह है कि मनुष्य की चेतना नाम और रूप से बंधी होती है। ज्ञानमार्ग में उपासना का सर्वाधिक महत्वपूर्ण आधार ज्ञान है अर्थात साधक शास्त्रों के द्वारा ब्रह्म के महात्म्य और स्वरूप को जानकर निश्चयात्मक ज्ञान के द्वारा उनका साक्षात्कार करने का प्रयास करता है। भक्तिमार्ग में साधना का अवलम्बन प्रेम एवं श्रद्धा है। इस

मार्ग में भगवान और भक्त के बीच अत्यन्त मधुर और अनुरागपूर्ण संबंध विकसित होता है। इस श्रद्धा व प्रेम का सहारा लेकर भक्त भगवान का साक्षात्कार प्राप्त करता है। क्योंकि इस मार्ग में भगवान के सगुण साकार सर्वशक्तिमान रूप की उपासना की जाती है। अतः साधक के लिए यह मार्ग सुगम और सरल है। भगवान इसे 'राजमार्ग' की संज्ञा देते हैं। भक्त प्रेमपूर्वक भगवान को जो कुछ समर्पित करता है वे उसे ग्रहण करते हैं।[3] भगवान के प्रति परम अनुरक्ति रखते हुए भक्त अपनी सभी क्रियायें, उन क्रियाओं के फल अपनी समस्त आसक्तियों भी भगवान को समर्पित कर देता है और ऐसा ही निर्देश श्री कृष्ण ने नवम अध्याय में अर्जुन को दिया। इस मार्ग में भगवान अपने भक्त को आश्वासन देते हुए

कहते हैं, कि– हे अर्जुन! तुम युद्ध करो मैं तुम्हें समस्त पापों से मुक्त करूंगा। (अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः)

भगवान श्री कृष्ण के इस वचन से यह ज्ञात होता है कि जहां एक ओर भक्त को कर्तव्य की ओर प्रेरित करते हैं वहीं दूसरी ओर ईश्वर की सत्ता का भी ज्ञान कराते हैं कि वह मैं ही हूं। साथ ही नवम अध्याय में श्रीकृष्ण कहते हैं, कि जो व्यक्ति अनन्य भाव से मेरा चिन्तन करते हुए मुझे निष्काम भाव से भजते हैं ऐसे समर्पित भक्तों का 'योग[4] क्षेम'[5] मेरा उत्तरदायित्व है।[6]

श्रीकृष्ण ने भक्तों की कई कोटियाँ बताई हैं–

1. आर्त
2. अर्थार्थी
3. जिज्ञासु

इनमें आर्त वे हैं जो दुःख कातर होकर प्रभु को पुकारते हैं। अर्थार्थी वे हैं जो किसी प्रयोजन के लिए भगवान की पूजा करते हैं तथा जिज्ञासु वे हैं जो भगवान का साक्षात्कार चाहते हैं और चौथे प्रकार के भक्त ज्ञानी हैं। ज्ञानमार्ग में भी परमात्मा का निश्चयात्मक ज्ञान उनके प्रति अनुराग पैदा करता

IJARSCT

International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology

International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal

ISSN: 2581-9429 Volume 5, Issue 5, May 2020 Impact Factor: 4.819

है। इन चारों प्रकार के भक्तों में भी सबसे निकृष्ट कोटि के भक्त वे हैं जो किसी स्वार्थ के लिए भगवान की पूजा करते हैं और उत्कृष्ट भक्त ज्ञानी हैं जो भगवान को अपना स्वरूप समझ कर उनकी उपासना करते हैं। गीता की भक्ति उपनिषदों के बहुत समीप है। परवर्ती काल में भक्ति जिस प्रकार भावुक और भावना प्रधान हुई वैसी भक्ति गीता में नहीं है। गीता की भक्ति ध्यान रूप है और उसमें उन सभी तत्वों की आवश्यकता है जो ज्ञानमार्ग हेतु आवश्यक है। यह भक्ति निदिध्यासन रूप भी है, जिसमें श्रद्धा और प्रेम का सम्बल लेकर भगवत साक्षात्कार की चेष्टा होती है। भक्तिमार्ग एवं ज्ञानमार्ग में भेद केवल अधिकारी की दृष्टि से है जो भावुक हैं वे भक्तिमार्ग का और बुद्धिजीवी ज्ञानमार्ग का ही अनुसरण करते हैं। जहां तक कर्म का प्रश्न है यह दोनों के लिए आवश्यक है। ज्ञानमार्ग का साधक कर्तव्य बुद्धिपूर्वक अनासक्त भाव से करता है और भक्तिमार्ग का साधक समस्त कार्यों को भगवान की सेवा समझकर सम्पादित करता है तथा अपनी समस्त क्रियाओं व फलों को प्रभु को अर्पित कर देता है। बारहवें अध्याय[7] के दशवें श्लोक में भगवान ने बहुत सुन्दर बात कही है कि यदि तुम निवृत्त हो और अभ्यास करने में असमर्थ हो तो सारे कर्मों को मेरा ध्यान करते हुए मेरे लिए करो। ऐसा करने से भी तुम ब्रह्म साक्षात्कार रूप सिद्धि को प्राप्त कर सकते हो।

इस प्रकार निष्काम कर्म का तत्व, ज्ञान एवं भक्ति दोनों के साथ संयुक्त है जिसमें ज्ञानी और भक्त को निष्काम बुद्धियुक्त कर्मों का संपादन करना है। अतः गीता के सिद्धान्त में ज्ञान, कर्म एवं भक्ति तीनों एक दूसरे के विरोधी न होकर पूरक हैं। गीता की भक्ति भावना, सरल, सहज एवं भावात्मक करने वाली है। जिसमें ही ईश्वर रूप श्रीकृष्ण द्वारा सगुण रूप परमेश्वर को मानने के लिए कहा गया है।

मनुष्य के चित्त को शान्त करने वाला तत्व है— भक्ति और प्रेम की तरंग। लोग राम, कृष्ण के प्रेम में हो जाते हैं उन्हें सभी मनुष्यों की आत्मा में भी वही दिखाई देते हैं। जैसे— एक प्रेमी को सर्वत्र उसकी प्रेमिका दिखाई देती है। अतः इस दृष्टि से आत्मा उच्च से उच्चतर बन जाती है और ऊँच-

IJARSCT

International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology

International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal

ISSN: 2581-9429 Volume 5, Issue 5, May 2020 Impact Factor: 4.819

नीच का भेद भी समाप्त हो जाता है। तब सभी आत्माएँ राममय व कृष्णमय हो जाती हैं। गीता में निष्काम कर्म की महत्ता को दर्शाते हुए बताया गया है, कि कर्म और भक्ति के बिना ज्ञान असंभव है और ज्ञान ही है, साथ ही किसी भी कर्म को बुद्धि और विवेक के साथ ही किया जाना चाहिए। कर्म में आसक्त होकर कर्म को कर्म के लिए करने वाले मनुष्य को ही परमआनन्द की प्राप्ति होती है और कर्म न करना ही मृत्यु है। इस कर्म के साथ भक्ति परमानन्द ;का साधन है। गीता के उपदेश का प्रारम्भ प्रवृत्ति या शरणागति से होता है तथा इसका पर्यवसान भी शरणागति में ही हुआ है। जब भगवान श्रीकृष्ण ने अंतिम अध्याय के अंत में अपने उपदेश का समापन यह कह कर किया है कि हे अर्जुन! अब तू मेरे सर्वाधिक गोपनीय पर रहस्यमय इस वचन को सुन कि तू सब कुछ छोड़ मेरी अनन्य शरण में आ जा, तू निश्चित ही मुझे प्राप्त कर लेगा।[8] भक्त भगवान के वचनों से आश्वस्त होकर ही भक्ति में तल्लीन रहता है। श्रीकृष्ण ने कहा कि यदि कोई दुराचारी भी उनकी भक्ति में रत है, तो वह धर्मात्मा हो जाता है।[9] अतः यह जन्म-मरण के बंधन से मुक्त हो जाता है। गीता की भक्ति अंधभक्ति नहीं है अपितु यह ज्ञान और कर्म से अनुप्राणित है। भक्ति, ज्ञान एवं कर्म का भेद लौकिक व्यवहार का विषय है क्योंकि अपनी परमावस्था में सभी अपरिच्छिन्न रूप में परिणत हो जाते हैं। भक्ति का सामान्य अर्थ भगवान का भजन, सेवा, स्मरण है और यह भी भक्त और भगवान के भेद पर निर्भर है किन्तु पराभक्ति में अखण्ड, ज्ञानानन्द रूप भगवद्स्वरूप में भक्त और भगवान एकाकार हो जाते हैं।

भक्ति उपासना है जिसमें तैल धारावत भावपूर्वक स्मरण किया जाता है। अखण्ड चिन्तन की अवस्था में भक्त का भगवान से एकीकार हो जाता है। इस प्रकार पराभक्ति और परज्ञान में कोई भेद नहीं रहता। गीता में बारम्बार भक्ति एवं ज्ञान के परस्पर समन्वय का प्रतिपादन किया गया है। अतः कालजयी गीता केवल मोक्षशास्त्र ही नहीं अपितु जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मार्गदर्शन करने वाला धर्मशास्त्र भी है। गीता केवल धर्म की संस्थापना ही नहीं करती अपितु गुरु शिष्य परम्परा का भी

उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती है। उपासना पर अत्यधिक जोर देते हुए गीता बताती है, कि किसी भी देवता के प्रति नमस्कार एक परमात्मा के लिए ही नमस्कार है— "सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति" छोटे-छोटे स्वार्थों हेतु की गई विविध देवी-देवताओं की पूजा को भी श्रीकृष्ण अविद्यापूर्वक की गई ब्रह्म पूजा कहते हैं।[10] गीता में 'लोकसंग्रह' का संदेश देते हुए कहा गया है कि लोक कल्याण के लिए सामान्य जन के समान ही उपासना, यज्ञ, दान, तप आदि का कार्य करते रहना चाहिए। श्रीकृष्ण स्वयं योगेश्वर होने पर भी प्रातः एवं सायं नियमपूर्वक उपासना करते हैं। अतः जब तक मनुष्य स्वार्थ युक्त उद्देश्य लेकर ईश्वर का ध्यान करता है तब तक वह भक्तियोग की परिधि में नहीं आता। इस प्रकार चित्त की निर्मलता के बिना निःस्वार्थ प्रेम संभव ही नहीं है। पराभक्ति ही भक्तियोग है। भक्ति शुद्ध अनुराग एवं श्रद्धापूर्ण अलौकिक प्रेम है। गीता के ग्यारहवें अध्याय में कहा गया कि परमेश्वर विराट एवं इन्द्रियातीत हैं किन्तु लौकिक विषय ग्रहण करने वाले हैं। पुत्र का पिता के समान, सखा के लिए सखा के समान, प्रिय के लिए प्रियतम के समान भगवान भक्त का ध्यान रखते हैं। 'भक्ति' भगवद् साधना का एक ऐसा मार्ग है जिसमें धर्म, कर्म एवं भक्ति का सुन्दर समन्वय है। मानव जीवन की पूर्णता इन तीनों के सम्मिश्रण से ही संभव है अर्थात मानव जीवन की सार्थकता 'गीता' रूपी अमृत में ही निहित है।

संदर्भ ग्रन्थ :

1. श्रीमद्भगवद्गीता— अध्याय 1/2

   "राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्।

   प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम्॥" अध्याय— 9/2

2. क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।

   अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते॥ अध्याय— 12/5 (श्रीमद्भगवद्गीता)

IJARSCT

International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology

International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal

ISSN: 2581-9429 Volume 5, Issue 5, May 2020 Impact Factor: 4.819

3. पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।

तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥ श्रीमद्— अध्याय 9/26

4. योग— भगवद् के स्वरूप की प्राप्ति का नाम योग है।

5. क्षेम— भगवद् प्राप्ति के निमित्त किये हुए साधन रक्षा का नाम क्षेम है।

6. अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।

तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥ श्रीमद्— अध्याय 9/22

7. अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना।

परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन्॥ श्रीमद्गीता— अध्याय 8/8

8. श्रीमद्भगवद्गीता— अध्याय 18/64

9. अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।

साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥ अध्याय— 9/30

10. श्रीमद्भगवद्गीता— अध्याय 9/23

11. भारतीय संस्कृति, डॉ. दीपक कुमार— प्रकाशन चौखम्बा सुरभारती संस्करण— 2018

12. श्रीमद्भगवद्गीता— गीता प्रेस